RESEARCH PAPER

RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
e-ISSN: 2455-3085 | Vol.06 | Iss.09 | September 2021 | pp. 73-77
Double-Blind Peer Reviewed/Refereed Journal

वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों में सामाजिक चिंतन

आरती देवी

पीएच.डी. शोधार्थी, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू

Abstract

गोरखपुर ज़िले के बडहलगंज ब्लॉक के सहडोली गाँव में 1 जनवरी 1962 में जन्मे डॉ. वशिष्ठ अनूप हिंदी साहित्य के युवा ग़ज़लकार हैं | वर्तमान युग में ग़ज़ल का विषय नायिका के हुस्न की तारीफ़ नहीं है बल्कि जीवन की हक़ीक़त तथा कटु यथार्थ को व्यक्त करना है। विरह की अग्नि को छोड़कर वह विद्रोह की मशाल बन चुकी है। भौतिक सुख में फंस कर नीतिपरायण व्यवहार को आदमी भूलता जा रहा है। परिवार मनुष्य के जीवन में निरंतरता, एकता तथा स्थिरता स्थापित करता है। लेखक ने समाज में बदलते मानवीय मूल्यों, स्त्री की दशा और दिशा, ग्रामीण जीवन, अकेलापन, महानगरीय जीवन, आधुनिक सभ्यता, आम आदमी की पीड़ा आदि को विषयों को अपनी ग़ज़ल के माध्यम से चित्रित किया है।

Keywords: *समाज, पारिवारिक विघटन, आधुनिक सभ्यता, नारी*

Article Publication

Published Online: 15-Sep-2021

***Author's Correspondence**

आरती देवी

पीएच.डी. शोधार्थी, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू

artidevi18495[at]gmail.com

10.31305/rrijm.2021.v06.i09.011

© 2021The Authors. Published by RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary. This is an open access article under the CC BY-NC-ND license (https://creativecommons.org/licenses/by-nc-nd/4.0/)

Introduction

हिन्दी ग़ज़ल के कथ्य तथा शिल्प में परिवर्तन लाकर दुष्यन्त कुमार ने हिन्दी ग़ज़ल को नए आयाम प्रदान किए तथा परवर्ती ग़ज़लकारों के लिए आदर्श बने | दुष्यंत के बाद हिंदी ग़ज़ल परम्परा को बलबीर सिंह रंग, त्रिलोचन, अदम गोंडवी, डॉ. कुँवर बेचैन, ज़हीर कुरैशी, ज्ञानप्रकाश विवेक, रामकुमार कृषक, शिव ओम अम्बर, डॉ. शेरजंग गर्ग, अशोकी मिज़ाज, महेश अश्क, कमलेश भट्ट कमल, विज्ञान व्रत, शिवकुमार पराग, वशिष्ठ अनूप आदि ने आगे बढ़ाने का कार्य किया है | इसी परम्परा में गोरखपुर ज़िले के बडहलगंज ब्लॉक के सहडोली गाँव में 1 जनवरी 1962 में जन्मे डॉ. वशिष्ठ अनूप हिंदी साहित्य के युवा ग़ज़लकार हैं | इन्होंने गीत, ग़ज़ल, कहानी, आलोचना तथा ग़ज़ल के क्षेत्र में लेखनी चलाई परन्तु मुख्य रूप से ग़ज़लकार के रूप में प्रसिद्ध हैं | ग़ज़ल को परिभाषित करते हुए अनूप जी लिखते हैं :

‘‘कल गुफ्तगू थी हुस्न और इश्क की,
भूखी जमात की पुकार आज है ग़ज़ल।
वह लाज जो लुटने को है मजबूर कहीं भी,
चिथड़ों में सिमटती हुई वह लाज है ग़ज़ल।
वह दर्द जो होठों पर तड़पकर ही रह गया,
उस दर्द की गर्जन भरी आवाज़ है ग़ज़ल।
वह जुल्म जो सदियों से दरिन्दों ने किया है,

उस ज़ुल्म के खिलाफ अब एतराज़ है ग़ज़ल।'' [1]

वर्तमान युग में ग़ज़ल का विषय नायिका के हुस्न की तारीफ़ नहीं है बल्कि जीवन की हक़ीक़त तथा कटु यथार्थ को व्यक्त करना है। विरह की अग्नि को छोड़कर वह विद्रोह की मशाल बन चुकी है।

लेखक ने समाज में बदलते मानवीय मूल्यों, स्त्री की दशा और दिशा, ग्रामीण जीवन, अकेलापन, महानगरीय जीवन, आधुनिक सभ्यता, आम आदमी की पीड़ा आदि को चित्रित किया है।

मानवीय मूल्य समाज में रहने वाले मनुष्य को सही दिशा देकर उसके विकास में सहायक होता है। हर युग में मानवीय मूल्य बदलते हैं परन्तु वर्तमान समय में सकारात्मक मूल्यों-न्याय, अहिंसा, सत्य आदि का पतन हो रहा है और फरेब, हिंसा, छल, अन्याय आदि की प्रवृति बढ़ रही है। मानवीय मूल्यों के अभाव के कारण ही मनुष्य का जीवन संकटों से घिरा हुआ है। मनुष्य अपने मूल्यों को भूलकर हिंसक पशु बन रहा है। छल, प्रपंच अहंकार और असत्य आदि भाव ही अधिकांश मनुष्यों के मूल्य बन गए हैं:

''वफा, इंसानियत, इश्को मोहब्बत,
ये सब बेकार होता जा रहा है।'' [2]

मनुष्य के भीतर परोपकार, दया, क्षमा आदि भावनाएं खत्म होती जा रही हैं। दया, प्रेम, अहिंसा आदि भावों की जगह परायापन, अकेलापन और घुटन बढ़ती जा रही है। सत्य को जीवन जीने का आधार माना गया है परन्तु आज मनुष्य असत्य के अंधकार में डूबता जा रहा है।

बौद्धिकता की अति होने के कारण इंसान में संवेदना विलुप्त होती जा रही है। भौतिक सुख में फंस कर नीतिपरायण व्यवहार को आदमी भूलता जा रहा है। इन्सान के ज़मीर को परखने वाले मापदण्ड तेज़ी से बदलते जा रहे हैं या खत्म हो रहे हैं:

''ये समझना बहुत ही मुश्किल है,
कौन सच्चा है कौन झूठा है।
जो भी चाहे खरीद सकते हो,
अब तो सब कुछ यहाँ पे बिकता है।'' [3]

बिकने की प्रवृत्ति ने अस्तित्व के संकट पर पश्नचिह्न खड़ा किया है। हर चीज़ का आधार पैसा बन गया है। व्यक्ति के आचरण को परखने की कसौटी नैतिकता, विनम्रता, धैर्य आदि नहीं बल्कि धन बन रहा है। धन के मद में इन्सान अपने विवेक का परित्याग करने से भी नहीं डरता है।

रचनाकार इस बात के समर्थन में है कि आज भी मानवीय मूल्यों को पैसे से नहीं खरीदा जा सकता है। मनुष्य का यह सपना कभी सफल नहीं हो सकता कि वह अर्थ के आधार पर प्रेम, आदर और सम्मान का पात्र बना रहेगा | आत्मसम्मान भरा जीवन व्यक्ति के आचरण पर निर्भर करता है भौतिक साधनों की उपलब्धता पर नहीं। भौतिक सुख की निरर्थकता पर ग़ज़लकार लिखते हैं:

''हज़ारों महल बनवा लो बहुत सी गाड़ियाँ ले लो,
अगर किरदार बौना है तो खुद्दारी नहीं आती।'' [4]

महल के निर्माण तथा गाड़ियों को खरीदने के लिए पैसे की ज़रूरत पड़ती है परन्तु खुद्दारी के लिए सच्चाई, ईमानदारी, नैतिकता, साहस आदि गुणों का होना अनिवार्य है। इन सबके सामने धन की शोभा तुच्छ प्रतीत होती है । मनुष्य दुनिया से छल-कपट कर ऊँचाइयों को छू तो सकता है परन्तु आत्मनिरीक्षण करने पर वह अपने आप को धोखा नहीं दे सकता। वह स्वयं सत्य और असत्य को जानता है।

आज भी व्यक्ति अपने आप को सबसे ज़्यादा महफूज़ घर में मानता है। चाहे वो मानसिक तौर पर हो या शारीरिक तौर पर हो। परिवार मनुष्य के जीवन में निरंतरता, एकता तथा स्थिरता स्थापित करता है। आज परिवार के मानचित्र पर बाज़ार की छींटे पड़ रही हैं। परिवार में संवेदनहीनता जन्म ले रही है:

''चलो बाज़ार से आ गये, पर
ये घर बाज़ार होता जा रहा है।'' [5]

बाज़ार का परिवेश हमारे रिश्तो के लिए खतरनाक साबित होता जा रहा है। बाज़ार में वस्तुओं का मोलभाव किया जाता है तथा केवल अपने मुनाफे पर ध्यान केंद्रित होता है। भारतीय संस्कृति का सार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है अर्थात् हमारी संस्कृति में संपूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में स्वीकार किया गया है। परिवार में एक-दूसरे के हित के लिए कार्य किए जाते हैं। पूरे विश्व को परिवार मानने वाला देश आज अपने ही घर को बाज़ारवाद के संकट से बचाने की लड़ाई लड़ रहा है।

गाँव के लोग अपनी रोज़ी-रोटी की तलाश के लिए महानगर की ओर पलायन कर रहे हैं। महानगर का जीवन अभिशप्त वरदान है अर्थात जीवन जीने का ऐसा वरदान जो अभिशाप सहित है। महानगर में प्रत्येक भौतिक सुविधा उपलब्ध तो है परन्तु आवास की समस्या, आर्थिक तंगी, अकेलापन, परायापन आदि समस्याएं भी है जिस कारण मनुष्य कुण्ठा, तनाव, बेचैनी आदि का शिकार हो रहा है। बेरोज़गार और निस्सहाय को षहर में अपने-अपने मतलब के लिए उंगलियों पर नचाया जाता है। वह शहर में रहकर संघर्षमय दोहरी ज़िदगी जीने के लिए विवश होता है:

''चन्द सिक्कों पे बिका प्यार तुम्हें कैसा लगा,
मेरे शहर का कारोबार तुम्हें कैसा लगा।''[6]

शहर व्यापार का केन्द्र है, जहां सजीव और निर्जीव दोनों का व्यापार होता है। भौतिक सुख होने पर भी शहर में रहने वाला व्यक्ति प्रतिदिन ज़हर का घूंट पीकर जीवन व्यतीत करता है।

महानगर में रहने वाले व्यक्ति का आचरण विचित्र है। उसके अन्तर्मन तथा बाह्य व्यवहार में ज़मीन-आसमान का अंतर है। झूठ, फरेब, नफ़रत आदि उसके दिनचर्या का हिस्सा बन चुके हैं । दमन के चक्र में फंसकर वह सब कुछ खो बैठा है। महानगर का जीवन बाहर से तो लुभावना दिखता है परन्तु भीतर से उसमें कोई सौंदर्य नहीं है। महानगर ऐसा कारागार है जिसमें हर व्यक्ति अदृश्य रूप से कैद है। वह घुटन को महसूस तो करता है परन्तु सांसारिक सुख की आड़ में उस पर पर्दा डाले रखता है।

महानगरीय जीवन ने मनुष्य के भीतर दहशत और अकेलापन भर दिया है। उम्मीद, आस्था आदि की डोर कमज़ोर होती जा रही है। अकेलेपन के कारण हताशा, निराशा,उदासी आदि नकारात्मक उर्जा स्वतः ही मनुष्य को घेर लेती है :

''हर घड़ी आपदाओं का घेरा न था,
आदमी इस तरह से अकेला न था।
थोड़ा-थोड़ा उजाला था हर द्वार पर,
रोशनी कम थी यूँ अँधेरा न था।
लोग लड़-भिड़के भी साथ रह लेते थे,
इस तरह से कभी तेरा-मेरा न था।'' [7]

आधुनिक जीवन की विडम्बना यह है कि मनुष्य अस्वस्थ सामाजिक परिस्थितियों से गुज़र रहा है, जिस कारण उसके भीतर की संघर्षरूपी ज्योति की लौ धीमी होती जा रही है। अकेलापन अब एक विकराल समस्या बनती जा रही है।

आधुनिक युग का आरम्भ शहरीकरण से माना जाता है। औद्योगिक क्रांति के कारण इसमें तेज़ी से प्रगति हुई। आज कपड़ों की अजीबो-गरीब बेतरतीब-सी नुमाइश आधुनिक होने की पहचान बन चुकी है। अमीर स्वेच्छा से कपड़ा फाड़कर पहने तो फैशन, गरीब मजबूरी में तन को इधर-उधर से फटे कपड़ों में खुद को ढकने की कोशिश करे तो उसे नकारा समझा जाए:

''कोई फैशन में नंगा है, कोई नंगा विवशता में,
तमाशा देखने वालों की हैरानी का क्या मतलब।'' [8]

एक के लिए जो फैशन है, दूसरे के लिए लाचारी है। अनूप जी तमाशा देखने वालों पर व्यंग्य करते हैं कि विवश ता भी अब मनोरंजन का साधन बन रही है।

उपभोक्तावादी वस्तुओं ने बच्चों से उनका बचपन छीन लिया है। इलेक्ट्रानिक खिलौनों, कार्टून नेटवर्क चैनेलों, स्मार्ट फोन, इंटरनेट आदि ने बच्चों को कमरे में बंद कर, उन के प्राकृतिक विकास को बांध दिया है। वह मानिसक रूप से गुलाम हो रहे हैं, वह केवल उतना ही देख पा रहे हैं जितना उन्हें दिखाया तथा सुनाया जा रहा है। इस प्रकार की स्थिति हमारी नई पीढ़ी के लिए घातक है। बचपन अब बचपन सा नहीं रहा:

''बच्चों के जीवन से जाने बचपन कहाँ गया,
वह रोना-धोना, ज़िदियाना ठनगन कहाँ गया?
बच्चे भी अब बच्चों जैसी बात नहीं करते,
खेल, खिलौनों दूध-भात का आँगन कहाँ गया?
सुबह शाम की धमा-चैकड़ी, गोली, गुल्ली डंडा,
डाल-डाल पर ओल्हा पाती मधुबन कहाँ गया ?'' [9]

पहले बच्चे परिवार के सदस्यों के साथ बैठकर, खेलकर अपना समय व्यतीत करते थे जिस कारण उनका संतुलित शारीरिक तथा मानसिक विकास होता था। रिश्तों की सही पहचान होती थी। आज देश का भविष्य पतन की ओर बढ़ रहा है।

एक ओर भारत दूसरे देशों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रहा है तो दूसरी ओर शिक्षा की दौड़ में पिछड़ रहा है। हमारे देश का भविष्य कम्प्यूटर पर कैसे चल सकता है, जहाँ अभी तक कापी, किताब का अभाव है। देश में शिक्षा व्यवस्था के नमूने को दिखाते हुए अनूप जी लिखते हैं:

''जहाँ बिजली नहीं, काॅपी किताबें भी नहीं मिलती,
हमारे रहनुमा कम्प्यूटरों की बात करते हैं।'' [10]

डिजिटल इंडिया जैसी पहल के दौर में हमारी सरकारें शिक्षा क्षेत्र की मौलिक सुविधाएं सभी विद्यालयों में उपलब्ध नहीं करवा पाई है।

आधुनिक समाज अपने आप को सभ्य मानता है परन्तु समाज के आईने में स्त्री की आँखों में बेबसी तथा लाचारी नज़र आती है:

''गाँव से दिल्ली तलक दुःषासनों का तार है,
आज हर बेटी यहाँ लगती बहुत लाचार है।'' [11]

द्रौपदी का चीरहरण महाभारत तक सीमित नहीं है बल्कि आज के युग में भी नारी के चीर हरण के किस्से आम हैं। आज का दुःशासन बलात्कार कर द्वापर के दुःशासन को मात दे रहा है। नारी के सम्मान की धज्जियां उड़ाने वाले दरिंदे समाज में बड़ी संख्या में मौजूद हैं। आए दिन स्त्री के अपहरण की खबरें आती हैं। हमारा समाज इस स्तर तक गिर गया है कि देवी रूप में जिस स्त्री की पूजा करता है, जिसे शक्ति का प्रतीक मानता है, उसी का अपहरण भी करता है |

नारी सशक्तिकरण के दौर में नारी को स्वयं आगे बढ़कर लड़ना और अपने अस्तित्व की रक्षा करनी होगी। लेखक नारी को लाचारी से बाहर निकाल कर स्वयं की रक्षक बनने के लिए प्रेरित करते हैं:

''ज़रूरी हैं कि द्रौपदियाँ स्वयं बाँधे कमर क्योंकि,
दुशासन छोड़ दे तो कृष्ण पट ले भाग जायेंगे।''[12]

यह जरूरी है कि नारी रक्षक के इंतज़ार को छोड़कर अब स्वयं के अस्तित्व की रक्षक बने।

समाज में अन्याय को खत्म करने के लिए न्याय का रास्ता ही कारगर है। अपने चारों तरफ हताशा और निराशा का माहौल देखकर चुपचाप भाग्य पर इल्ज़ाम लगाना कायरता है। निराशा से निकलने का रास्ता आशा से गुज़रता है और आशा को कायम रखने के लिए निरंतर

संघर्ष अनिवार्य है। बेहतर समाज के लिए अराजक परिस्थितियों से टकराहट एक कारगर उपाय है। खूबसूरत समाज की कल्पना करते हुए वशिष्ठ जी लिखते हैं:

''एक व्याकरण नये ढंग का लिखना है इस दुनिया का,
इस समाज का इक सुन्दर-सा ताना-बाना लिखना है।
बन्दीगृह से मुक्त करना है सूरज की किरणों को,
हर प्राणी के हक में उसका आबो-दाना लिखना है।''[13]

दुनिया से अंधकार तभी खत्म होगा जब समाज का प्रत्येक प्राणी अपनी जिम्मेदारी ईमानदारी से निभाये।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं सामाजिक स्तर पर अनूप दो प्रकार से विद्रोह को चित्रित करते हैं। जब वे पारिवारिक विघटन और युवा पीढ़ी की भटकन से आहत होते हैं तो उनके उस रूप का चित्रण कर अप्रत्यक्ष विद्रोह उद्धृत करते हैं। जब वे व्यापक धरातल पर नारी अस्मिता के हनन और सामाजिक आराजक स्थिति को देखते हैं तो सीधे-सीधे विद्रोह का बिगुल भजाते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

वशिष्ठ अनूप, बंजारे नयन, पृ.1

वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कोंपले, पृ.11

वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ. 62

वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ. 12

वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कोंपले, पृ.11

वशिष्ठ अनूप, बंजारे नयन, पृ.44

वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ. 28

वशिष्ठ अनूप, तेरी आंखे बहुत बोलती हैं, पृ. 39

वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कोंपले, पृ.60

वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ. 22

वशिष्ठ अनूप, तेरी आंखे बहुत बोलती हैं, पृ. 27

वशिष्ठ अनूप, बंजारे नयन, पृ.5

वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ. 110